समाज विकासमाला

अच्छा किया या बुरा?

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ४१

अच्छा किया या बुरा ?

जीवन की कुछ उलझनें

लेखक
आत्माराम बेहकी

सम्पादक
यशपाल जैन

१९५७
सस्ता साहित्य मंडल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री; सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा।

बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

यह पुस्तक-माला इन्हीं बातों को सामने रखकर निकाली गई है। इसमें कई पुस्तकें निकल चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान है। विषयों का चुनाव बड़ी सावधानी से किया गया है। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में उन्हें सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

दूसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटायंगे।

—मंत्री

पाठकों से

जब हम कोई गलत काम करने की सोचते हैं या करते हैं तो हमारी आत्मा हमें वैसा करने से रोकती है। अगर हम उसकी आवाज के कहने पर चलें तो हमारा जीवन बराबर निखरता जाता है। अगर हम उस आवाज को दबाते जायं तो वह मंद पड़ने लगती है और कभी-कभी ऐसा लगता है मानो वह मर गई। लेकिन सच यह है कि वह मरती नहीं। उसकी हालत दीये की उस बत्ती की तरह हो जाती है, जो जलती तो है; पर शीशा काला हो जाने के कारण उसकी रोशनी बाहर नहीं आ पाती।

अपने असली रूप को देखने के लिए मन के इस मैल को दूर करना बहुत जरूरी है। यह मैल तभी दूर हो सकता है जब हम अपने भीतर से उठती पुकार को सुनें और उसकी मानें।

इस किताब में कुछ ऐसी घटनाएं दी गई हैं, जो हमें सोचने के लिए बहुत-सा मसाला देती हैं। आप पढ़ें और समझें कि किसी भी हालत में गलत काम करना ठीक नहीं है। कठिनाइयों को जीतने और लोभ-लालच से बचने पर आदमी को जो आनंद मिलता है, उसकी बराबरी दुनिया की कोई भी चीज नहीं कर सकती।

—सम्पादक

अच्छा किया या बुरा ?

: १ :

कुम्भ-स्नान

कुछ समय पहले की बात है—कुम्भ-मेला आया। उस मौके पर हरिद्वार जाकर गंगा-स्नान को मेरा दिल चाहता था, पर टीका लगवाने को मैं तैयार न था और बिना टीका लगवाये हरिद्वार का टिकट मिल नहीं सकता था। एक मित्र ने चलने पर जोर दिया, मैंने मजबूरी बताई। मित्र बोले, "आप चिंता न करें। सब ठीक हो जायगा।"

शाम को उसने बिना टीका लगवाये टीके का सर्टीफिकेट और टिकट मेरे हाथ पर रख दिया और दूसरे दिन सवेरे हम हरिद्वार पहुंच गए। हरि की पौड़ी पर स्नान किया, साधू-महात्माओं के दर्शन किये। जहां गंगा-स्नान से मन को शान्ति मिलती थी, वहां झूठे सर्टीफिकेट का खयाल आते ही एक हलकी लहर-सी दिमाग को चीरती हुई निकल जाती थी।

इस घटना को बीते कई वर्ष हो गये हैं, परन्तु मैं आज भी सोचता हूं कि झूठा सर्टीफिकेट लेकर कुम्भ-स्नान करके मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: २ :

रोगी की सहायता

उस समय बजे तो आठ ही थे, परन्तु सर्दी के दिन होने के कारण अंधेरा और ठंड काफी हो चुकी थी। मैं बस के अड्डे के पास से गुज़र रहा था। मैंने पीछे देखा कि बस आई। रामदास भागा, परन्तु बस में जगह ही न थी। बेचारा घबराया हुआ निराश होकर अड्डे पर वापस आ गया। मैंने देखा कि बुखार से वह कांप रहा था। मुझे दया आ गई। पहले तो वह साईकिल पर बैठने को तैयार ही न होता था, परंतु समझाने-बुझाने पर बैठ गया। हम लोग अगले चौक में ही पहुँच पाये थे कि सिपाही ने रोककर मेरा चालान कर दिया। दिल्ली में साईकिल पर दो जनों के न बैठने का नियम बन चुका था। पेशी के दिन मजिस्ट्रेट साहब देरी से आये। मेरा सारा दिन बेकार गया। पांच रुपये जुर्माना देना पड़ा। अपमान हुआ सो अलग। कानून ने मुझे दोषी ठहराया, परन्तु मेरे मन में शान्ति-सी थी।

फिर भी मैं कई बार सोचता हूं कि मैंने कानून को तोड़कर एक मुसीबत में फंसे बीमार की मदद करके अच्छा किया या बुरा ?

: ३ :

भगवान की पूजा

पाकिस्तान से आने के बाद सवेरे मंदिर जाना मेरा रोज का काम हो गया था। पांच बजे ही मंदिर में पहुंच जाता और भगवान् के चरणों में बैठकर मन को शान्त करने की कोशिश करता। एक दिन पुजारी ने कहा, "भगवान के चरणों में चढ़ाने के लिए कुछ फूल ही ले आया करो। मैं उसका भाव समझ गया। उसी दिन से कुछ पैसे चढ़ाने शुरू कर दिये, परन्तु देवताओं के चरणों में तो फूल चढ़ाये जाते हैं। इतने सवेरे फूल कहां से आते ? साथ वाले बंगले में मदनबाबू रहते थे। उनके यहां काफ़ी फूल लगे हुए थे। मैं जाते समय दो-चार फूल तोड़ लेता और भगवान् के चरणों में चढ़ा देता। बाग़ तो था नहीं जो पता न चलता। कुछ ही दिनों के बाद मदनबाबू कहने लगे कि उनके बंगले से कोई फूल तोड़कर ले जाता है। मैंने कहा, "दो-चार तो मंदिर जाते समय मैं ही ले लेता हूँ।"



"दो-चार फूल तो मंदिर जाते समय मैं ले लेता हूं।"

वह बोले, "तो भगवान् की पूजा हमारी फुलवारी के सिर पर हो रही है !"

मेरे लिए इतना ही काफी था। उस दिन से मैं फूल तो नहीं ले जाता, परन्तु सोचता हूं कि इतने दिन बिना पूछे फूल ले-जाकर और भगवान के चरणों में चढ़ाकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: ४ :

पराई मोटर

गुप्तासाहब ने कहा, "आप मोटर ले जा सकते हैं, परन्तु पौने छः बजे तक वापस आना होगा। मैंने छः

बजे के खेल के टिकट ले रखे हैं।"

मैंने जवाब दिया, "आप विश्वास रखें, मैं पहुंच जाऊंगा।"

हमारी बैठक ठीक पांच बजे खत्म हो गई। मैं वापस आने के लिए मोटर में बैठा ही था कि "हाय-हाय" की आवाज़ आई। मैंने देखा कि एक आदमी दिल के दौरे के कारण कराह रहा था। मैंने पूछा, "आपका घर कहां है ?"

वह बोला, "लोदी रोड पर।" मैं सोच में पड़ गया। पौने छः बजे वापसी का वादा और एक आदमी इतनी तकलीफ़ में! "अच्छा, देखा जायगा।" मैंने रोगी को उठाकर आराम से कार की पिछली सीट पर लिटा दिया और बड़ी तेजी से लोदी रोड की तरफ़ चल दिया; पर पौने छः तो लोदी रोड पर ही बज गये। घर पहुंचा तो गुप्तासाहब गुस्से से लाल-पीले हो रहे थे। मैंने क्षमा मांगी और दबी ज़बान से कहा, "एक आदमी की जिन्दगी का सवाल था।"

उन्होंने झुंझलाकर कहा, "जनाब मैंने मोटर आप को योगाश्रम जाने के लिए दी थी, बीमार ढोने के लिए नहीं।"

गुस्से में, पता नहीं, वह क्या कुछ कहते गये। मैं

लज्जित था, क्योंकि मैंने चूक की थी, परन्तु फिर भी मन में संतोष था। भीतर से उठती आवाज़ मुझसे कह रही थी कि "तुम दोषी नहीं हो। तुमने मानव-धर्म का पालन किया है।" फिर भी मैं बड़ी देर तक सोचता रहा कि पराई मोटर से बिना पूछे बीमार की सेवा करके मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: ५ :

बस के अड्डे पर

तेरह नंबर की बस में भीड़ तो रोज ही रहती है। आज इतवार होने के कारण भीड़ का ठिकाना न था। कोई साठ सवारियां लाइन लगाये खड़ी थीं। बस आई, सवारियां बैठनी आरंभ हो गईं। मेरी बारी आई कि कंडक्टर ने हाथ से मुझे न चढ़ने का इशारा कर दिया। सवारियां पूरी हो चुकी थीं। इतने में एक आदमी आया और झट से चढ़ गया। वह बस-विभाग का कोई अधिकारी जान पड़ता था, क्योंकि कंडक्टर ने उसे रोका नहीं। मेरे दिल पर एक ठेस-सी लगी। मुझे ऐसा लग रहा था, मानों किसीने मेरा अधिकार छीन लिया हो। मैंने कंडक्टर से शिकायत की। वह चुप था। मैंने उन सज्जन से कहा, "आपको यह शोभा



"यह आपको शोभा नहीं देता"

नहीं देता। अगर हम पढ़े-लिखे ही ऐसा करेंगे तो औरों को कैसे रोक सकते हैं ?" इस बात का उसके दिल पर बड़ा असर पड़ा और वह नीचे उतर आया। अब वह मेरा मित्र बन चुका था। मैंने उसका हाथ पकड़ा। पर यह क्या ? वह तो अंगारे की तरह जल रहा था। मैंने अचरज से कहा, "अरे, आपको बुखार है!"

वह बोला, "इसी कारण तो मैं बस में चला गया था।"

मैंने दुःखित होकर कहा, "तो आपने पहले यह बात क्यों नहीं बताई ?"

वह चुप !

बस जा चुकी थी और मैं बेबस था।

बड़ी देर तक सोचता रहा कि एक रोगी को बस में से यों उतारकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: ६ :

व्यापारी की मित्रता

लाला करोड़ीमल के साथ मेरा पुराना संबंध था। लाहौर में वह कपड़े के बड़े व्यापारी थे; परन्तु पाकिस्तान बनने के बाद उन्होंने शरणार्थी बाजार में एक छोटी-सी दुकान ले रखी थी। मैं चार बरस के बाद पहली बार उनसे मिला। वही पुरानी आवभगत, ममता और प्यार। मैंने लट्ठा मांगा। उन्होंने दिखाया। कहने लगे, "आपसे दो रुपये गज़ ही लगाऊंगा।" मैंने दस गज़ नापने को कहा। वह नाप ही रहे थे कि इतने में एक और बाबू आ गये। उन्होंने पूछा— "क्या भाव है यह लट्ठा ?"

लालाजी ने कहा, "अढ़ाई रुपये गज।"

उस आदमी ने मेरी ओर ऐसे देखा, जैसेकि लाला-जी की बात की सचाई पूछ रहा हो। मैं चुप रहा। जिस समय से करोड़ीमल ने अढ़ाई रुपये गज़ कहा

था, मेरे दिल में एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ था। एक ओर करोड़ीमल से पुराना सम्बन्ध दूसरी ओर यह झूठ। मेरे लिए निश्चय करना कठिन हो रहा था। आदमी ने छः गज़ लट्ठा लिया और पंद्रह रुपये निकाल कर लालाजी के हाथ पर रख दिये। अब मुझसे न रहा गया। मैंने कह ही दिया, "मुझे तो दो रुपये गज़ दे रहे हैं।" करोड़ीमल बहुत लज़्जित हुए। उस आदमी ने बहुत सख्त-सुस्त कहा और तीन रुपये वापस ले लिये।

क़रोड़ीमल मुझपर बड़े बिगड़े। बोले, "मैंने आपके साथ कभी बुरा बर्ताव नहीं किया था, हमेशा भाई की तरह माना, पर तुमने किस जन्म का बैर निकाला? तुमने मित्र के साथ दग़ा की।" पता नहीं, क्रोध में वह और भी क्या-क्या कहते रहे। यह सारी घटना बार-बार मेरे दिमाग़ में चक्कर लगा रही थी। मैं बहुत देर तक सोचता रहा कि करोड़ीमल क़ी मित्रता क़ी परवा न करते हुए उनकी झूठ बताकर मैंने अच्छा किया या बुरा?

: ७ :

संसद का चुनाव

संसद का चुनाव हो रहा था। हमारे इलाके से लाला दीनदयाल और डाक्टर श्यामलाल खड़े थे।

दीनदयाल मेरे मित्र थे। कालेज में हमने चार साल एक साथ बिताये थे। अब वह कपड़े के बड़े व्यापारी थे और शहर के मशहूर लखपति; बहुत मिलनसार थे, परंतु उनकी जायदाद ब्लैक की कमाई थी। सिवा मालदार होने के संसद का सदस्य बनने के लिए इनमें और कोई योग्यता न थी। हां, कुछ सप्ताह से उन्होंने मंदिर जाना, दान-पुण्य करना और भिन्न-भिन्न संस्थाओं को मदद देना शुरू कर दिया था। दूसरी ओर श्यामलाल के मन में सेवा का भाव था और योग्यता भी। मैं उनको जानता नहीं था, परन्तु उनकी सेवाएं मुझसे छिपी न थीं। दीनदयाल एक दिन मेरे घर आये। कहने लगे, "मैं आप-जैसे मित्रों के भरोसे ही खड़ा हुआ हूं। आपकी तो बहुत लोगों से जान-पहचान है। हां, आपका सेवा-दल भी तो बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। मैंने उसके लिए पांच हज़ार रुपये अगले साल के बजट में रख दिये हैं।

मैं सोच में था। एक ओर अपने सेवा-दल के लिए पांच हज़ार रुपये और पुराना संबन्ध, दूसरी ओर एक आदमी का सेवा-भाव, त्याग तथा योग्यता। मन में बड़ी उथल-पुथल थी। "पांच हज़ार से हम समाज की बड़ी सेवा कर सकते हैं।" मन में विचार उठता था। उसी

समय आवाज़ आती थी—"तुम वोट बेचना चाहते हो ? दीनदयाल तुम्हारा मित्र है, तो क्या आत्मा की आवाज़ कोई चीज़ नहीं होती ?" इसी प्रकार की उथल-पुथल मेरे दिमाग़ में चल रही थी। चुनाव का दिन आया। मेरा दिल धड़कने लगा। हाथ में कंपन थी, सांस में तेज़ी। मैंने साहस किया और वोट श्यामलाल के डिब्बे में डाल दिया। दीनदयाल मुझसे नाराज़ हो गये और सेवा-दल के कुछ अधिकारी भी। मैं कई दिन तक सोचता रहा कि सेवा-दल के पांच हज़ार रुपये का नुक़सान करके और दीनदयाल की मित्रता का ध्यान न करते हुए श्यामलाल को वोट देकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: ८ :

गेहूं का दान

जन्माष्टमी के दिनों में हमारी गली में यज्ञ हो रहा था। सैकड़ों ग़रीबों को खाना खिलाने की बात थी। हर घर अपनी-अपनी हैसियत के हिसाब से अनाज दे रहा था। मेरा तो अपने घर का ही राशन पूरा न होता था; मैं अनाज कहां से देता। लोगों ने कहा, "ब्लैक में जितना चाहो, गेहूं ख़रीद सकते हो।" मैंने

पांच रुपये के गेहूं खरीदे और भंडार में दे दिये।

उस समय मुझे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मैंने अपना काम पूरा कर दिया।

इस बात को बहुत समय बीत गया है, पर मैं आज भी सोचता हूं कि मैंने ब्लैक में खरीदे गेहूं का दान देकर अच्छा किया या बुरा ?

: ९ :

बच्चे को शिक्षा

शाम को भोजन करने के बाद बिस्तर पर लेटकर अपने बच्चे की दिन-भर की आपबीती सुनकर दिल बहलाना मेरा स्वभाव बन चुका था। अशोक ने कहा, "बाबूजी, मैंने गुड्डी को बहुत मारा।"

उसकी बहादुरी पर मैंने उसे शाबाशी दी और कहा, "तुम बड़े शेर हो। खूब दूध पिया करो; और भी बलवान हो जाओगे, तो फिर गुड्डी तो क्या, बिल्लू भी तुम्हारे सामने खड़ा नहीं हो सकेगा।"

अशोक बोला, "बाबूजी, माताजी कहती हैं कि गुड्डी को मत मारा करो।"

मैंने फौरन उत्तर दिया, "बेटे, तुम्हारी माताजी बड़ी डरपोक हैं। जरा-सी बात पर डर जाती हैं।

तुम्हें तो बहादुर बनना है, डरा न करो।"

हर रोज अशोक मुझे किसी-न-किसी को मारने की खबर सुनाता और मैं खुशी से फूला न समाता। मुझे ऐसा लगता मानों मेरा उपदेश उसे दिन-ब-दिन बलवान बनाता जा रहा है।

शनिवार होने के कारण आज दफ्तर दो बजे ही बंद हो गया। घर आया तो सन्नाटा छाया हुआ था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई दुर्घटना हो गई हो। मैंने देखा कि अशोक के सिर पर पट्टी बंधी हुई है। खून बहुत बह जाने के कारण वह मूर्च्छित हो गया था और उसकी मां उसके सिरहाने बैठी पंखा झल रही थी। मुझे देखकर उसकी आंखों में आंसू आ गये। धीरे से बोली, "अशोक का तो आज नया ही जन्म हुआ समझिए। अगर मैं समय पर न पहुंचती तो गुड्डी का भाई इसे जान से मार डालता। खून बहुत निकला है। अब भी कुछ पता नहीं कि क्या होगा?"

गुस्सा होकर मैंने कहा, "तुमने गुड्डी के भाई को क्यों नहीं मारा? मैं उसकी जान निकाल लूंगा। कहां है वह दुष्ट?"

मेरी पत्नी ने मुझे शान्त किया। बोली, "उसे मारने से अशोक को आराम नहीं हो जायगा। मैं



"अशोक का तो आज नया ही जन्म हुआ समझिए ।"

अशोक से रोज़ कहा करती थी कि बेटा, लड़ाई अच्छी नहीं होती । पर न जाने उसपर इसका क्यों असर ही नहीं पड़ा था । जब अपना बच्चा अच्छा न हो तो दूसरे का क्या दोष ?"

पत्नी के आखिरी शब्द बार-बार मेरे कानों में गूंज रहे थे। मुझे ऐसा लगा कि अशोक की चोट का मूल कारण मैं ही हूँ। मैं सोच रहा था कि मैंने अशोक की लड़ाई की ओर बढ़ती हुई रुचि को न रोककर और उसे झूठी बहादुरी की सीख देकर अच्छा किया या बुरा ?

: १० :

बूटों की एजेन्सी

नौकरी से रिटायर होने पर मुझे बीस हज़ार रुपये अपने हिसाब के मिले। शहर छोड़कर मैं गांव चला गया। गांव छोटा-सा था, परन्तु आस-पास के गांवों से बड़ा था। कुछ दुकानें भी थीं। उनके कारण काफी चहल-पहल रहती थी। कुछ मकान पक्के भी बन गए थे और एक कच्ची-सी सड़क शहर तक जाने लगी थी।

गांव के एक ओर चमारों के बहुत-से घर थे। उनका काम जूते बनाकर अपने और आस-पास के गांवों में बेचना था। तीस-चालीस घर इसी तरह गुज़ारा करते थे।

गांव में आकर मैं अपने लिए काम ढूंढ़ रहा था। विचार आया कि जूतों की एजेन्सी ले लूं। चमारों को पता लगा तो कई लोग मिलकर मेरे पास आये। कहने लगे, "हम ग़रीब हैं, हमारी रोज़ी तो इन जूतों पर ही चलती है, आप पढ़े-लिखे हैं, पैसेवाले हैं, क़ोई और धंधा कर लीजिए, नहीं तो हम भूखों मर जायेंगे।"

उनके आने और इस तरह बात करने का मुझपर

उल्टा ही असर पड़ा। मैं समझा कि इन्हें व्यापार में काफी बचत होती होगी, इसलिए ऐसी बातें कर रहे हैं।

दूसरे ही दिन मैं शहर गया और एजेन्सी ले आया। मशीन के बने हुए सस्ते जूते लेकर मैंने दुकान सजा ली। पहले-पहल लोग मशीन के जूते लेने को राज़ी न हुए, परन्तु धीरे-धीरे लेने लगे। मेरी दुकान चल निकली। चमार अब भी जूते बनाते थे, परन्तु बहुत कम। मेरी दुकान का असर लगभग सभी घरों पर पड़ा।

एक दिन शाम को मैं उनके घरों की ओर जा निकला। देखा कि जहां पहले चहल-पहल रहा करती थी, जूतों के मोल-भाव हुआ करते थे, चमार बैठे जूते बनाया करते थे, वहां अब सन्नाटा था। टूटे-फूटे मकान ठंडे चूल्हे, निराश और उतरे हुए चेहरे! ऐसा लगता था कि नक़्शा ही बदल गया है। मैंने एक बूढ़े से पूछा, "यह क्या बात है?"

वह रोकर बोला, "बहुत सारे लोग तो मर-खप गये, काम-धंधे के बग़ैर कोई कबतक चल सकता है? जबसे लाहौरिये बाबू ने बूटों की दुकान की है, हमारा तो कारोबार ठप हो गया। भला हो उसका! हमारे भाग में इसी तरह भूखों मरना लिखा होगा।"

मैंने देखा, उसकी जबान पर शिकायत थी, दुःख था; पर गाली न थी। इस दर्द-भरी कहानी को सुन मेरी आंखों में आंसू आ गये। मुझे वह दिन याद आ गया, जब कुछ सफेद दाढ़ीवाले भोले-भाले लोग मेरे पास आये थे और कहते थे, "आप कोई और धंधा कर लीजिए। आप तो पढ़े-लिखे हैं, पैसेवाले हैं। हम ग़रीब हैं। हम भूखों मर जायंगे।

इसके बाद से अब दुकान पर मेरा मन नहीं लगता। मैं बार-बार सोचता हूं कि अपने लाभ की ख़ातिर ग़रीब चमारों का काम छुड़वाकर और जूतों के घरेलू उद्योग को हमेशा के लिए बंद कराकर मैंने अच्छा किया या बुरा?

: ११ :

बेबसी की रिश्वत

चपरासी पार्सल भेजने के लिए कई दिन तक रेलवे बुकिंग आफ़िस जाता रहा, परन्तु पार्सल न लिया गया। चपरासी ने कहा, "सब चार आने फी पार्सल देते हैं। आप भी दे दें तो पार्सल अभी बुक हो सकता है।"

मैंने ऐसा करना बुरा समझा, पार्सल पड़ा रहा।

जब भी चपरासी जाता, बाबू कोई-न-कोई बहाना करके उसे वापस भेज देता।

पार्सल न पहुंचने के कारण भाई को बहुत तकलीफ हो रही थी। मैंने मजबूर होकर चार आने दिये और पार्सल बुक करा दिया।

बाबू ने कहा, "हमारी तनखा बहुत थोड़ी है, हम लाचार हैं और सरकार सबकुछ जानती है।"

अब हमारे पार्सल तो शीघ्र ही ले लिये जाते हैं, परंतु अपनी मजबूरी और कमजोरी को देखकर दिल बार-बार पूछता है कि चार आने फी नग रिश्वत पर पार्सल बुक कराके तुम अच्छा कर रहे हो या बुरा ?

: १२ :

व्यसनी को दान

मैं पूरे बीस वर्ष बाद ऋषिकेश गया था। मन में साधु-महात्माओं के दर्शनों की और उनसे कुछ शिक्षा लेने की बड़ी इच्छा थी। मेरे साथ मेरे मित्र आनंदजी भी थे। हम सूरज निकलने से पहले ही लक्ष्मणझूला की यात्रा को निकल पड़े। लगभग एक मील चलने के बाद एक गुफा दिखाई दी। उसके भीतर से लाल

रोशनी चमक रही थी। पास जाकर देखा तो पता चला कि एक महात्मा अंदर धूनी रमाये बैठे हैं। हाथ में एक लंबी चिलम थी और सामने एक बड़ी लकड़ी जलकर रोशनी और गर्मी दोनों दे रही थी।

महात्मा ने चिलम का दम लगाया और फिर हमें उपदेश देना शुरू कर दिया, "सबमें एक ही परमात्मा है, जगत् में भिन्नता नहीं। जो एक को अनेक में और अनेक को एक में देखता है, वही ज्ञानी है।"

कितना उत्तम उपदेश था! जाते समय हमने नमस्कार किया और कुछ पैसे निकालने के लिए मैंने जेब में हाथ डाला। आनंदजी आगे निकल गये थे। मुझे बटुआ निकालते हुए देखकर कहने लगे, "पूरी चिलम के पैसे दे देना, बाबाजी को आज सुलफ़े की कमी न रहे।"

इन थोड़े से शब्दों का मेरे मन पर वही असर पड़ा जो शान्त जल में कंकड़ फेंकने का हुआ करता है। बहुत-सी बातें मन में उठने लगीं :

"सुलफ़े के लिए पैसे देना बुरा है।....तुम अच्छी भावना से दे रहे हो।...दान देने के बाद, दान के खर्च का अधिकार दान लेनेवाले को है, देनेवाले को नहीं... दान ठीक आदमी को देना चाहिए।....केवल सुलफ़ा

पीने के एक अवगुण से आप महात्माजी को कुपात्र नहीं कह सकते ।" ये और ऐसे बहुत-से सवाल मेरे दिमाग़ में चक्कर लगा रहे थे। मैंने पैसे तो दे दिये, परन्तु देर तक सोचता रहा कि सुलफ़ा पीनेवाले साधु को दान देकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: १३ :

कथनी और करनी

बिना फल की इच्छा रक्खे सेवा करने पर आज मेरा तीसरा व्याख्यान था। मुझे पांच बजे पहुंचना था। काम अधिक होने के कारण घर में ही देर हो गई। समय-पर पहुंचने के लिए मैं मोटर तेज़ी से चला रहा था। अभी थोड़ी ही दूर गया था कि सड़क पर बड़ी भीड़ दिखाई दी। मैंने मोटर खड़ी कर ली। देखा कि एक साईकिल-सवार ट्रक के नीचे आकर घायल हो गया है और लहू से लथ-पथ है। लोगों ने मुझे उसको मोटर में अस्पताल पहुंचाने का अनुरोध किया। पर मेरे दिमाग़ में समाज और अपने व्याख्यान का ही विचार था। मैंने मजबूरी बताते हुए कहा, "एक बड़े जरूरी काम से मैं जा रहा हूं। क्षमा कीजिए। पहले ही देर हो गई है।"

यह कहकर मैंने मोटर चलाई और सभा में पहुंच



"एक बड़े जरूरी काम से जा रहा हूँ ।"

गया। लोगों ने तालियां बजाकर मेरा स्वागत किया। मैंने पूरे एक घंटे 'बिना फल की इच्छा करके सेवा' पर धुआंधार व्याख्यान दिया। लोग उसकी तारीफ़ कर रहे थे--"इन-जैसा बोलनेवाला शहर भर में नहीं है।" इधर कान तारीफ़ सुन रहे थे, उधर एक आवाज़ बराबर मुझसे पूछ रही थी, "तुमने सच्ची सेवा को छोड़कर और सेवा पर व्याख्यान देकर अच्छा किया या बुरा ?"

: १४ :

धन बनाम आत्मा

पत्रकार-कला में मेरी पहले से ही रुचि थी। एम० ए० पास करने के बाद मैं एक दैनिक समाचार पत्र के कार्यालय में नौकर हो गया। अपनी मेहनत और योग्यता से दो ही साल में सहायक सम्पादक बना दिया गया।

शर्माजी के जाने के बाद सम्पादक मुझे ही बनना था, परन्तु ऐसा न हुआ। पत्र के अधिकारियों ने मेरे नीचे काम करनेवाले वर्माजी को यह पद दे दिया। वर्माजी इस कार्य को कुशलता से न चला सके। दो मास में पत्र की बिक्री कम हो गई। मेरा विचार था कि अब मुझे सम्पादक बना दिया जायगा, परन्तु मुझे बड़ी निराशा हुई, जब पत्र के मालिकों ने बाहर के एक आदमी को इस पद पर नियुक्त कर दिया। पर वह भी पत्र की गिरती हुई दशा को न संभाल सका।

पत्र के संचालक महोदय ने एक दिन मुझे अपनी कोठी पर बुलाया। कहने लगे, "आपने मेरे पत्र की उन्नति में बड़ी सहायता दी है। आप कार्य-कुशल हैं

और योग्य भी; परंतु याद रखिए, यह अखबार हमने केवल देश-सेवा के लिए नहीं, अपनी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के लिए भी चलाया है। आपको हमारी नीति पर चलना होगा। हमारी प्रशंसा करनी होगी। हमारी इच्छानुसार सच-झूठ लिखना होगा। सरकार के साथ हमारी टक्कर है, उसके हरएक कार्य की आलोचना करनी होगी। आशा है, आप मुझे निराश न करेंगे।"

मैं सोच में पड़ गया। मेरी आर्थिक दशा बहुत खराब थी। सर्दी के दिनों में भी मेरे बच्चे ठंडे कपड़े पहनते थे और हम गली में छोटे-से मकान में रहते थे। आर्थिक कठिनाई के कारण मेरे सारे परिवार का जीवन फीका हो रहा था। मैंने 'हां' कर दी।

दूसरे ही दिन मुझे संपादक बना दिया गया। अब पत्र की बिक्री अच्छी हो गई है और मेरी आर्थिक दशा भी सुधर गई है। बड़ा घर, नौकर-चाकर और मोटर सब कुछ मेरे पास है, परन्तु आत्मा की आवाज, जो मुझे कठिनाई में भी शांति दिया करती थी, यदि मरी नहीं है तो मंद अवश्य पड़ गई है। मैं दूसरों की निगाह में ऊंचा उठा हूं, परन्तु अपनी ही निगाह में गिर गया हूं। कई बार सोचता हूं कि मैंने अपनी आर्थिक दशा को

सुधारने के लिए आदर्श से गिरकर अच्छा किया या बुरा ?

: १५ :

साकार भगवान

देश के बंटवारे के समय जो दुर्घटनाएँ हुईं, उनका मेरे मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। मैं नास्तिक से आस्तिक हो गया। हवन और संध्या के अलावा मंगलवार को व्रत रखना और सवेरे कुछ खाने से पहले भगवान को भोग लगाना, मेरा हर दिन का काम हो गया। हमने थोड़ा-थोड़ा चंदा इकट्ठा करके अपनी शरणार्थी बस्ती में एक छोटा-सा मंदिर भी बनवा दिया। भगवान को भोग लगाने के लिए अब मैं वहां जाता और भगवान राम की सुंदर मूर्ति के सामने बैठकर मन को शांत किया करता। एक दिन भोग लेकर घर से निकला ही था कि एक अतिथि मिल गया। उसके चेहरे पर उदासी थी, मगर आंखों में संकोच और लज्जा थी। ऐसा जान पड़ता था मानो कोई पेशेवर मंगता नहीं, मुसीबत का मारा एक मामूली-सा आदमी है। धीमी आवाज में,वह बोला,"बिना खाये आज तीसरा दिन है।" इतना ही कह पाया था कि उसका गला सूखने लगा

और वह आगे बोल न सका।

मुझे भोग लगाने की जल्दी थी। मैंने उसकी बात सुनी-अनसुनी कर दी और मंदिर की ओर चल दिया।

मंदिर में पहुंचकर भगवान् के चरणों में थाली रख दी और नम्रता से बैठ गया। उस दिन शिवरात्रि थी। भगवान् के चरणों में तरह-तरह के फल और मिठाइयां पड़ी हुई थीं। मैंने देखा कि पुजारी उन सब थालियों को बारी-बारी से समेट रहा है। मेरी बारी आई और मैंने भोग लगाया, परंतु मेरे मन में शान्ति न थी। उस कमज़ोर और दीन अतिथि की सूरत बार-बार मेरे दिमाग़ में चक्कर लगा रही थी और एक धीमी आवाज़ पूछ रही थी, "तुमने साकार भगवान् को छोड़ निराकार को भोग लगाकर अच्छा किया या बुरा ?"

: १६ :

श्राद्ध का पुण्य

पंडितजी ने कहा, "मैं किसी के घर न्यौता नहीं खाया करता। इसलिए नहीं कि मैं न्यौता खाने में अपनी हेठी समझता हूं। बात यह है कि आज-कल लोग डालडा का इस्तेमाल करते हैं। मैं उसे जहर समझता

हूं । उसके खाने से मेरा गला खराब हो जाता है और खांसी-जुकाम हो जाता है । आप तो असली घी ही इस्तेमाल करते हैं । आपके घर भोजन करने में मुझे कोई इन्कार नहीं है । कल जरूर आऊंगा ।"

पिताजी का श्राद्ध मैं हर साल बड़ी श्रद्धा से करता था । बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन कराता और उन्हें कुछ दान-दक्षिणा भी दिया करता था । इस बार मेरी स्त्री ने कहा, "आजकल सब घरों में डालडा खाते हैं । फिर इतने ब्राह्मणों का भोजन है । खर्च दुगुना-तिगुना हो जायगा ।" मैंने उससे बहुत बहस की, पर हारकर डालडा का टीन मंगवाना पड़ा ।

श्राद्ध के दिन ब्राह्मण इकट्ठे हो गए । मैंने बड़ी नम्रता से उन्हें जिमाया और दक्षिणा भी दी । जहां भोजन करवाने से मुझे शांति मिली वहां मन में हलचल भी मची रहती है कि डालडा खिलाकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

: १७ :

प्रण का पालन !

नशीली चीजें मैंने बचपन से ही कभी इस्तेमाल नहीं की थीं । बड़े होकर तो मुझे उनसे और भी घृणा

होने लगी। इसका नतीजा आगे चलकर यह हुआ कि मुझे शराबबंदी कमेटी का सभापति बना दिया गया। इस कमेटी के हर सदस्य को प्रण लेना पड़ता था कि वह न तो खुद किसी नशीली चीज़ का सेवन करेगा और न किसीको करावेगा।

कुछ दिन बाद हमारे दफ्तर के एक ऊंचे अंग्रेज अफ़सर इंगलैंड से आये। मैंने उनके मान में उनको और दूसरे अंग्रेज मित्रों को एक बड़े होटल में भोज दिया। खाने के बाद पीने की बारी आई। मैंने तो पानी ही पिया; लेकिन अंग्रेज मित्रों को उनकी इच्छा के अनुसार शराब मंगवा दी। उस समय मुझे ऐसा लगता था कि मैं अतिथि-सत्कार के धर्म का पालन कर रहा हूं, परन्तु अपने शराबबन्दी के प्रण का विचार आते ही मेरे दिल को ठेस-सी लगती थी। मैं अब भी शराबबंदी कमेटी का सभापति हूं, परन्तु कई बार सोचता हूं कि उस रात अंग्रेज मित्रों को शराब का पान कराकर मैंने अच्छा किया या बुरा?

: १८ :

मित्र की रक्षा

एक दिन एक मित्र बहुत घबराये हुए आये।

कहने लगे, "मोटरखाने में से अपनी मोटर निकालकर मेरी अंदर रखकर ताला लगा दीजिए और मुझे अपने घर में छिपा लीजिए । मैं मेरठ से आ रहा था । एक लड़का मेरी मोटर के नीचे आकर कुचल गया । पुलिस मेरा पीछा कर रही है । जल्दी कीजिए ।" मैं झटपट उठा और मित्र की मोटर को मोटरखाने में बंद कर दिया । थोड़ी देर बाद पुलिस की गाड़ी बड़ी तेजी से आई । इन्सपैक्टर ने मेरी गाड़ी पर एक नजर डाली और बिना रुके आगे चले गये । पुलिस हरचन्द कोशिश करने पर भी मित्र तथा उनकी गाड़ी को न पा सकी । मैं नगर का एक प्रसिद्ध नेता था । किसी के ख़याल में भी यह बात नहीं आ सकती थी कि मैं किसी अपराधी की ऐसी सहायता कर सकता हूं । मित्र बच गये, परन्तु मैं कई बार सोचता हूं कि अपनी मित्रता के कारण अपराधी को ऐसे छिपाकर मैंने अच्छा किया या बुरा ?

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतम बुद्ध
१०. निषाद और शबरी
११. गांव सुखी, हम सुखी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तंदुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास-मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मंदिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. ये थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिल-जुलकर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा

मूल्य प्रत्येक का छः आना

४१

छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल